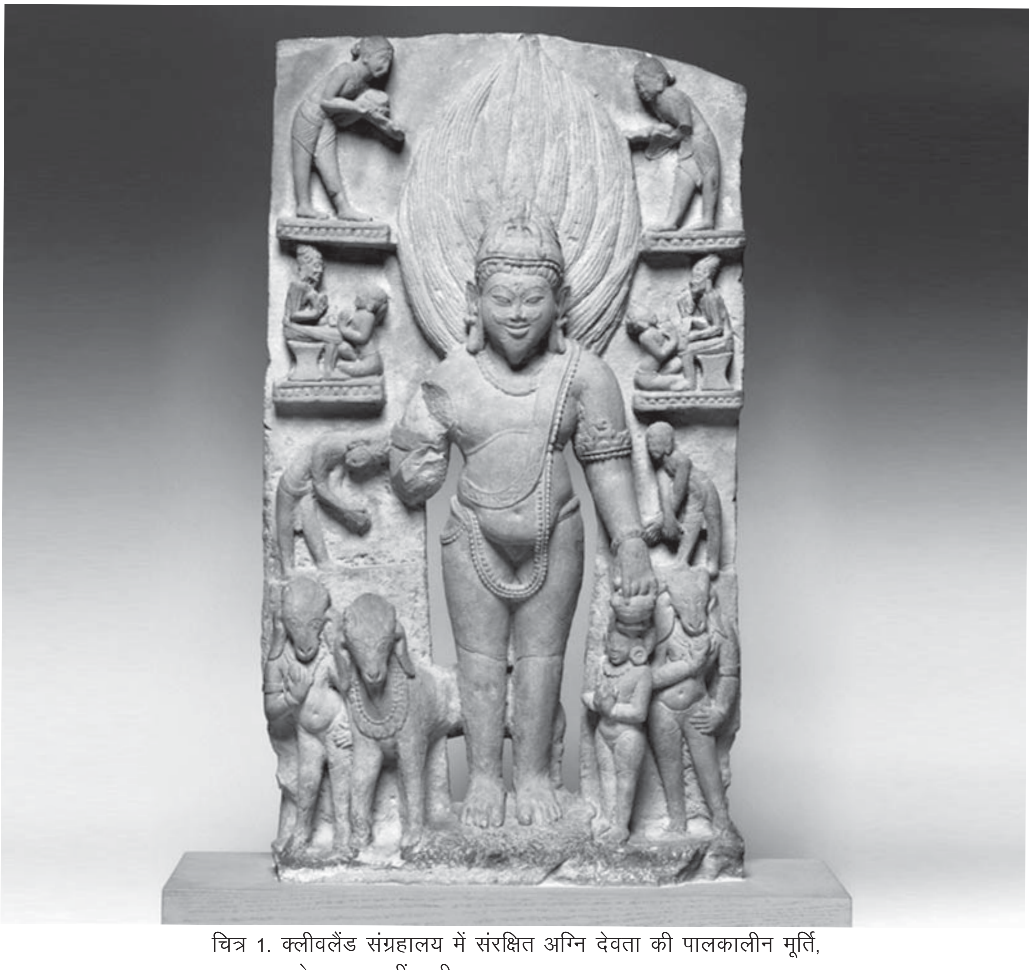
आचार्य से गुरु, उस्ताद से पीर

भारत में पूर्व-आधुनिकता और शिक्षण का बदलता स्वरूप

सी एन सुब्रह्मण्यम

अजन्ता के हारिति शिल्प पटल के बाद हमें शिक्षण के चित्रण कुछ शताब्दी तक विरले ही मिलते हैं। उत्तरप्रदेश से अग्नि देवता की पालकालीन (लगभग ग्यारहवीं सदी) मूर्ति है, जो वर्तमान में क्लीवलैंड संग्रहालय में सुरक्षित है (चित्र 1)। अग्नि देवता के दोनों ओर ब्रह्मचारियों का अंकन है। सबसे ऊपर वे आग में कुछ आहुति दे रहे हैं। बीच में दोनों ओर वे अपने शिक्षक के सामने बहुत ही विनम्रता, विनय, उत्सुकता और श्रद्धा से उनकी बातें सुन रहे हैं।



चित्र 1. क्लीवलैंड संग्रहालय में संरक्षित अग्नि देवता की पालकालीन मूर्ति, उत्तरप्रदेश, ग्यारहवीं सदी http://www.clevelandart.org/art/1955.51



चित्र 2. चित्र 1 का डीटेल (क)



चित्र 3. चित्र 1 का डीटेल (ख)

शिक्षक एक ऊँचे आसन पर बैठे हैं और सम्भवतः उनके हाथ में ताड़पत्र की पुस्तक है, जिसकी व्याख्या वे कर रहे हैं। शिक्षक बूढ़े और दुबले-पतले हैं जबकि दोनों ब्रह्मचारी हृष्ट-पुष्ट हैं। (चित्र 2,3)

देखने वालों को छात्रों का विनम्र भाव ही तुरन्त प्रभावित करता है। शिक्षक के चरणों में दुबककर, हाथ जोड़कर और उनके मुँह की ओर ताककर देख रहे हैं।

भारहुत, मथुरा और अजन्ता की छवियों से यह कुछ अलग है– वहाँ शिक्षक तोंद वाले थे, उनके सामने कई सारे शिष्य थे और इतनी विनम्रता किसी में नहीं थी। इस शिल्प में शिक्षक और छात्र की कल्पना कुछ बदलती नज़र आती है। शिल्पों की श्रृंखला में, मैं एक आख़िरी नमूना पेश करना चाहता हूँ जो इस कल्पना के अनुरूप ही है।

यह शिल्प उत्तरप्रदेश से काफ़ी दूर आन्ध्रप्रदेश और कर्नाटक की सीमा पर लेपाक्षी स्थित वीरभद्र स्वामी मन्दिर से है। यह विजयनगर साम्राज्य के काल का माना जाता है। लगभग 1530 ईसवी में विजयनगर साम्राज्य के दो उच्च अधिकारियों ने इस मन्दिर का निर्माण या पुनर्निर्माण कराया था। वैसे यह मन्दिर अपने चित्रों के लिए प्रसिद्ध है, मगर मुझे वहाँ काफ़ी रोचक शिल्प भी देखने को मिले। मन्दिर के अन्दरूनी दरवाज़े के दोनों ओर दो कहानियों को लेकर शिल्प पटलों की श्रृंखला है। इनमें से दाईं ओर पर जो श्रृंखला है, वह तमिलनाडु के शैव भक्तों में से एक की कहानी पर आधारित है। इसे तेरहवीं सदी में पेरिय पुराणम् नामक भक्तों की जीवनी पर आधारित ग्रन्थ में लिपिबद्ध किया गया था। इस कहानी के नायक हैं शिरुतोण्डर– जो कि रोज़ शिव भक्तों को भोजन कराने के बाद ही खाते थे। उनका एक बेटा था जिसे उन्होंने तीन साल पूरे होने पर विचार और भाषा संवर्धन एवं कला प्रशिक्षण के लिए पाठशाला भेजा। यह कोई गुरुकुल नहीं था मगर एक ग्रामीण पाठशाला थी, जहाँ बच्चे रोज़ सुबह जाते थे और शाम को लौट आते थे। यदि किसी कारण किसी दिन बच्चे को पाठशाला से जल्दी घर लाना होता था, तो उनके पिताजी पाठशाला जाकर बच्चे को घर लाते थे। इस प्रसंग का चित्रण उस मन्दिर की दीवार पर मुझे देखने को



चित्र 4. लेपाक्षी मन्दिर की दीवार पर बना शिल्प पटल (छायांकन सी एन एस)

मिला जो काफ़ी दिलचस्प है। (चित्र 4)

एक मन्दिर जैसे ढाँचे में एक ऊँचे आसन पर शिक्षक बैठे हैं और छात्र उनके पाँव छूकर नमस्कार कर रहा है और वे उसे आशीर्वाद दे रहे हैं। दो अन्य छात्र भी दिख रहे हैं और वे भी बहुत ही विनम्र मुद्रा में हाथ जोड़कर खड़े हैं। एक तरफ पिताजी अपने बालक को घर ले जाने के लिए खड़े हैं। शायद यह वही बालक है जिसने शिक्षक को प्रणाम किया था। वह अब पिता के साथ घर जाने के लिए तैयार है। आगे के पटल में पिता को अपने कन्धे पर बच्चे को



चित्र 5. अपने बच्चे को घर ले जाते पिता (छायांकन सी एन एस)

बैठाकर ले जाते हुए दिखाया गया है। कुछ हद तक यह यूनानी पेडगॉग की याद दिलाता है। (चित्र 5)

चित्र 4 में शाला का जो विवरण है वह अनोखा है। शिक्षण न खुली जगह हो रहा है, न पेड़ के नीचे। एक भव्य मन्दिर में शाला लग रही है। मन्दिर के वास्तु को बहुत खूबसूरती के साथ चित्र के मूल तत्त्वों को उभारने में उपयोग किया गया है। मन्दिर का शिखर ठीक शिक्षक के सिर के ऊपर है, जिससे उनकी महिमा आसमान छू लेती है। दरअसल वास्तु शिक्षक का ही अनुकरण करता दिखता है, मन्दिर का शिखर अगर उनका सिर है तो मण्डप की छत उनके हाथ जैसी आगे बढ़ रही है। शिक्षक पढ़ा नहीं रहे हैं, बल्कि चरण छूने वाले छात्र को हाथ बढ़ाकर आशीर्वाद दे रहे हैं। यह मान्यता झलकती है कि शिक्षक के पास कोई अलौकिक शक्ति है जो छात्र का उद्धार कर सकती है। शिक्षक केवल कुछ सिखाने वाले आचार्य की जगह एक आध्यात्मिक गुरु बन गए हैं। दोनों ही (पाल और लेपाक्षी) शिल्पों में गुरु योग पट्ट बाँधे दिख रहे हैं, उनको योगी के रूप में भी दर्शाया गया है। पूर्व मध्यकाल और मध्यकाल में मठों व आध्यात्मिक गुरुओं का बड़ा बोलबाला था। उनके प्रभाव से अब शिक्षक और गुरु की भूमिकाओं में आपसी आरोपण या 'ओवरलैप'

बढ़ने लगा, ऐसा प्रतीत होता है। लगभग उसी समय यानी 1540 ईसवी में काग़ज़ पर बने एक चित्र को देखें। (चित्र 6) भागवत पुराण की एक पाण्डुलिपि में बने इस चित्र में कृष्ण और बलराम को सांदीपनि के पास शिक्षा ग्रहण करते रहे हैं। इनमें से दो एक-दूसरे के आमने-सामने बैठे हैं और एक सांदीपनि को पीठ दिखाए बैठा है– यानी वे दोनों अलग से स्वाध्याय कर रहे हैं। यह चित्र काफ़ी हद तक उस समय प्रचलित इस्लामी कला शैलियों से प्रभावित है। उनमें



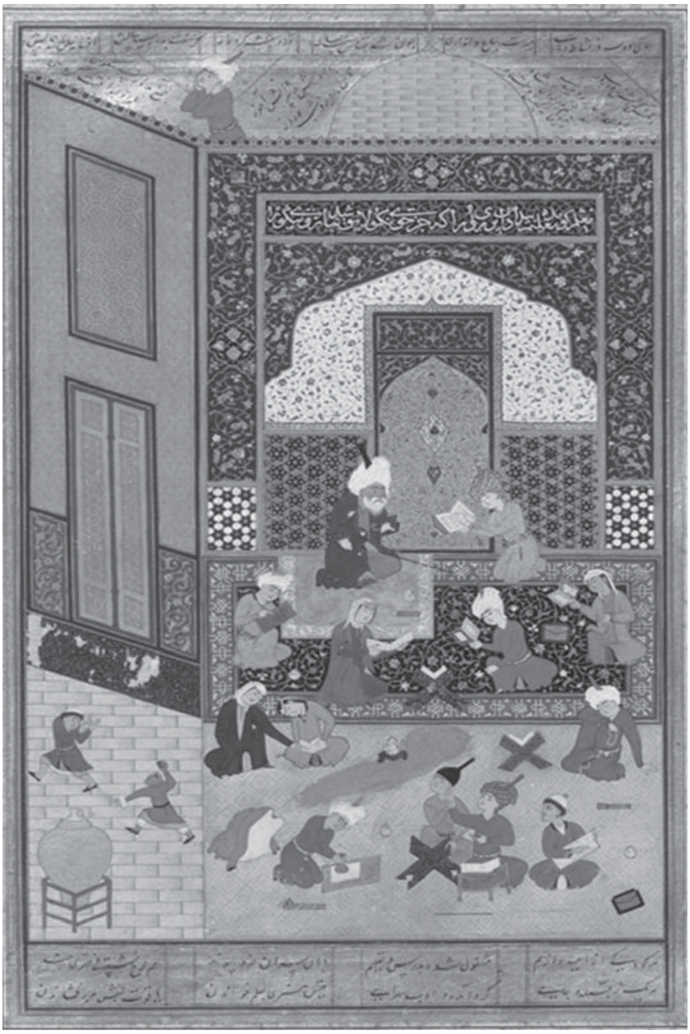
चित्र 6. सांदीपनि से कृष्ण और बलराम शिक्षा ले रहे हैं। (भागवत पुराण, लगभग 1540 ईस्वी)

हुए दिखाया गया है। सांदीपनि किसी आश्रम में नहीं, बल्कि एक सुन्दर तालाब के किनारे बने भव्य महल में शिक्षा दे रहे हैं।

भवन में इस्लामी वास्तुकला का प्रभाव स्पष्ट है। चटख लाल, नीले, काले, सफेद और सुनहरे रंगों से सारे पात्र उभर जाते हैं। जाहिर है कि इसमें शिक्षक का क़द उतना अधिक नहीं है जितना अन्य चित्रों में है– आख़िर शिष्य भी तो महानायक कृष्ण और बलदाऊ हैं। सांदीपनि के सामने चार छात्र हैं, सभी के हाथ में तख़्ती है जिसे वे अपनी जंघा पर रखकर पढ़ या लिख निहित भाव को समझने के लिए हमें उन चित्रों को भी देखना होगा।

पेरिय पुराणम् (जिससे प्रेरणा लेकर लेपाक्षी का शिल्प पटल बनाया गया था) में माना गया है कि गाँव में एक पाठशाला होगी, जहाँ तीन साल से ऊपर के बच्चे पढ़ने जाएँगे। यह भी विवरण मिलता है कि पाठशाला छूटने पर बच्चे दौड़कर घर आते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि चोल और बाद के काल में सुदूर दक्षिण भारत में ग्रामीण पाठशालाएँ आम हो गई थीं। हम देखते हैं कि इस तरह की पाठशालाएँ

मध्यकाल तक आते-आते भारत ही नहीं, बल्कि ईरान, इराक और मध्य एशिया के देशों में भी व्यापक हो गई थीं। इस दौर में बड़े साम्राज्य बनने लगे थे जिनमें लिपिक जैसे पढ़े-लिखे लोगों की ज़रूरत थी, जो गाँव-गाँव में उत्पादन और लगान का हिसाब-किताब रखें। शास्त्र आधारित पेशे (जैसे– स्थापत्य, चिकित्सा) भी बढ़ रहे थे जिनको अपनाने के लिए विशिष्ट ग्रन्थों के अध्ययन की ज़रूरत थी। और फिर इस्लाम जैसे धर्म जो लिपिबद्ध किताब पर आधारित थे, साक्षर होने पर ज़ोर देते थे। बालक और बालिका दोनों से अपेक्षा थी कि वे पढ़ें। इस कारण औपचारिक शिक्षा व्यवस्थाओं का विस्तार होने लगा था।



चित्र 7. 'लैला और मजनू मक़तब में।' हेरात में तैयार की गई निज़ामी की पुस्तक 'खम्सा' की प्रति से एक लघुचित्र, लगभग 1524-25 ईसवी। (मेट्रोपोलिटन कला संग्रहालय में संरक्षित)

ईरान जैसे इस्लामी देशों में हम मक़तबों की स्थापना देखते हैं जो स्थानीय मस्जिदों में होते थे और वहाँ के मौलवी साहब बच्चों को पढ़ाते थे। आमतौर पर वे ख़ुद ज़्यादा पढ़े-लिखे तो नहीं होते थे मगर कम-से-कम थोड़ा-बहुत पढ़ना-लिखना और इबादत करना सिखा देते थे। दस साल की उम्र तक के बालक और बालिकाएँ एक साथ मक़तबों में पढ़ते थे और बाद में चाहें तो उच्च शिक्षा के लिए मदरसों में दाखिला लेते थे, जो कि बालकों और बालिकाओं के लिए अलग होता था।

मध्यकालीन चित्रकला के इतिहास में ईरानी उस्ताद कलीमुद्दीन बिहज़ाद (मृत्यु-1535 ईसवी) का नाम बहुत बड़ा है। उन्हें माइकल एन्जेलो की श्रेणी में रखा जाता है। बिहज़ाद मूलतः अफ़गानिस्तान के हेरात शहर के निवासी थे जो बाद में जाकर ईरान के तबरीज़ में बस गए। इस पूरे इलाके की लघु चित्रकला पर उनका गहरा प्रभाव रहा। और कहा जाता है कि उनके कई शागिर्द अकबर के आमन्त्रण पर भारत आए और उसकी चित्रशाला में नए रंग रूप ले आए। नीचे निज़ामी की प्रसिद्ध पुस्तक खम्सा की एक कहानी "लैला मजनू" पर आधारित चित्र प्रस्तुत है। यह सम्भवतः बिहजाद

या उनके शागिर्दों के हाथ का बना है। (चित्र 7)

एक लघुचित्र में कितनी बारीकी भरी जा सकती है, यह चित्र इसका एक प्रमाण है। भव्य मध्य एशियाई मस्जिद, जिसमें नीले चमकीले टाइलों पर नक़्क़ाशी की गई है, पूरे मक़तब की पृष्ठभूमि बनाती है। उसकी नक़्क़ाशी वाली दीवार और अद्‌भुत कालीन वहाँ बैठे लोगों को फ्रेमों में बाँधता है। बाहर आँगन में सफेद फर्शियों का ईंटनुमा जमाव भी एक अति जीवन्त प्रसंग की पृष्ठभूमि बना है। ऐसा भी लगता है कि इमारत को इतना शानदार दर्शाने के पीछे की मंशा उस भवन या मक़तब का निर्माण कराने वाले सुल्तान की उपस्थिति दर्ज करने की भी रही होगी। इस पूरे चित्र की अवधारणा में वास्तुकला एक स्थिर भूमि प्रदान करती है जिसमें रंगीन और जीवन्त घटनाएँ घट रही हैं और ख़ासकर लैला और मजनू दोनों एक-दूसरे से मिल रहे हैं और उनके बीच प्रेम पनपने लगता है।

चित्र में लड़के आठ हैं और लड़कियाँ केवल तीन। इनके अलावा मौलवी साहब और उनकी एक महिला सहायिका भी है जो एक बच्ची को पढ़ा रही है। जहाँ तक मैंने देखा है, यह शायद किसी महिला शिक्षिका की पहली तस्वीर है। बालिकाएँ और बालक साथ पढ़ रहे हैं और उनके बीच मेलमिलाप भी सामान्य है। यह केवल इस्लामी मक़तबों के चित्रों में ही देखने को मिलता है। बालिकाओं की भागीदारी के बावजूद यह कहना लाज़मी है कि इस चित्र में एक अभिजातीयता निहित है, चाहे वह इमारत की शान में हो या फिर बच्चों के पहनावे में।

शिक्षक की आकृति चित्र में प्रधानता लिए हुए है और एक विशेष चादर पर और बेहद सुन्दर मेहराब के नीचे बैठना उनके महत्त्व को बढ़ा देता है। और उनके हाथ में एक लम्बी सण्टी भी है। फिर भी पूरे कॉम्पोजिशन पर उनका दबदबा नहीं है, और माहौल काफ़ी अनौपचारिक है। सभी बच्चे अपने-अपने तरीक़े से स्वाध्याय कर रहे हैं और शिक्षक के पास केवल एक बच्चा उपस्थित है। शायद बारी-बारी से वे उनके पास जाते, पाठ सुनाते या लिखा हुआ दिखाते। एक बच्चा माला जापने के बहाने सो रहा है तो एक और छत पर खड़े होकर ताक रहा है। दो बच्चे आँगन में लड़ने में व्यस्त हैं और सामने बैठे तीन बच्चे उत्तेजित होकर लड़ाई को देख रहे हैं (यह हमें अजन्ता के शिल्प पटल की याद दिलाता है)। एक बच्चा तल्लीन होकर खुरदुरे काग़ज़ को लिखने लायक़ बनाने के लिए तैयार कर रहा है। कुछ बच्चों के पास किताब रखने के लिए स्टैण्ड हैं और इधर-उधर बस्ते, दवात, क़लमदानी आदि बिखरे पड़े हुए हैं।

लगभग सारे बच्चे पढ़ना-लिखना सीख रहे हैं— तख़्तियों और काग़ज़ों पर 'अलिफ़ बे ते...' जो लिखा हुआ है। इस कक्षा में जो शिक्षण विधि झलकती है, वह है स्वाध्याय। हर बच्चा अपना अध्ययन अकेले में या किसी एक और के साथ कर रहा है। भारहुत, मथुरा, अजन्ता आदि के शिल्पों में जो सामूहिक शिक्षण दिखता है, वह यहाँ नहीं है। हाँ, अजन्ता में बुद्ध के शिक्षण का चित्र कुछ इसी तरह का था। वैसे स्वाध्याय प्रथा ऐसी शालाओं में जरूरी हो जाती है जहाँ कम संख्या में मगर अलग-अलग उम्र और रुचि- क्षमता वाले बच्चों को एक या दो शिक्षक पढ़ाते हों। हर बच्चे को उसकी उम्र और गति के आधार पर शिक्षक काम दे देता है और कुछ जटिल बातें समझा देता है, फिर उसे अपने आप पढ़ने या अभ्यास करने देता है। वह बाद में जाकर याद किया गया पाठ सुनाए या फिर लिखा हुआ दिखाकर जँचवा ले।

इस दौर के ईरान और मध्य एशिया से हमें इस प्रसंग के अनेक चित्र मिलते हैं, जिनमें से कुछ इस चित्र से पहले के हैं और ज़्यादातर बाद के हैं। शायद यह काफ़ी लोकप्रिय प्रसंग रहा होगा। बिहज़ाद घराने के इस चित्र का मुग़ल मक़तब चित्रों पर काफ़ी प्रभाव था। अब हम उनमें से दो पर विचार करेंगे।

मुग़ल बादशाह अकबर जब लाहौर में रह रहा था तब उसके निर्देश पर यह प्रति बनाई गई थी। (चित्र 8) चित्रकार का नाम एक काग़ज़



चित्र 8. 'लैला और मजनू मक़तब में।' लाहौर में तैयार की गई अमीर खुसरो रचित 'खम्सा' की पुस्तक की प्रति से एक लघुचित्र। कलाकार धर्मदास, लगभग 1595-97 ईसवी (वाल्टर्स कला वीथि, बाल्टिमोर में संरक्षित)

की चिप्पी पर लिखकर चिपकाया गया है। उसका नाम था धरमदास। अमीर खुसरो की तरह धरमदास भी ठेठ हिन्दुस्तानी था। दोनों ने मिलकर अरबी मूल के लैला और मजनू की कहानी का हिन्दुस्तानीकरण कर दिया। घने पेड़ों-ख़ासकर उर्वरता के प्रतीक-केले के पौधों के बीच एक विशाल आँगन है जो चारों तरफ़ से दहलानों और कमरों से घिरा है। इस सुरक्षित इलाके में पहुँच एक दरवाज़े से है जिस पर एक पहरेदार बैठा हुआ है। आँगन के बीच में एक ऊँचे चबूतरे पर कालीन बिछा है और उस पर मौलवी साहब विराजमान हैं। उनका वज़न बढ़ाने के लिए उनको एक बड़ी तख़्ती (कुशन) दी गई है। उनकी सेवा में एक बालक खड़े होकर पंखा झल रहा है। मौलवी साहब के दोनों ओर लैला और मजनू दो अन्य लड़कियों के साथ बैठे हैं। आँगन के निचले हिस्से में कुछ लड़के क़तार में बैठे अपना लिखना-पढ़ना कर रहे हैं। लेकिन पाँच बच्चे आपस में लड़ने में मशग़ूल हैं। उनकी आवाज़ को अनसुना करते हुए चौकीदार दरवाज़े पर सो रहा है। उसके सामने भी कुछ आवाज़ें आ रही हैं। एक महिला एक अनमने बालक को मक़तब में भेजने का प्रयास कर रही है। शायद यह सब रोज़मर्रा आवाज़ें हैं जिनसे चौकीदार विचलित नहीं होता है। मौलवी साहब के हाथ में तो छड़ी नहीं है मगर चित्र में तीन छड़ियाँ ज़रूर दिख रही हैं– एक सोए हुए चौकीदार के हाथ में, एक बच्चे को ला रही महिला के हाथ में और एक पीछे आ रहे भिखारी के हाथ में। अब शिक्षण एक सुरक्षित प्राँगण में होने लगा है, जो शाला को बाहरी दुनिया से अलग करता है– चाहे हरे-भरे बगीचे हों या पहाड़ हो या फिर ग़रीबी और आवारगी।

अकबर ने रामायण और महाभारत का फ़ारसी में अनुवाद करवाया था और इन पुस्तकों को चित्रों से सजाने का काम कुछ ख़ास शाही कलाकारों को दिया था। इन बेहद ख़ूबसूरत चित्रों में हम रामायण और महाभारत की मुग़ल कल्पना देख सकते हैं। दोनों पुस्तकों की अकबर की निजी प्रतियाँ अभी भी जयपुर के सवाई मानसिंह संग्रहालय में संरक्षित हैं। यह पुस्तकें इतनी लोकप्रिय हुईं कि इनकी कई अन्य प्रतियाँ भी बनाई गई थीं। इनके चित्रकारों ने मूल पुस्तक का अनुकरण भी किया, मगर शायद वे उतने पहुँचे हुए नहीं थे जितने कि अकबर के चित्रकार थे। तो इन पुस्तकों की चित्र शैली को उप-शाही (सब-इम्पीरियल) शैली कहा जाता है।

यहाँ हम उप-शाही शैली में बने एक लघुचित्र को देखेंगे जिसे महाभारत की अनूदित पुस्तक के लिए बनाया गया था।[1] महाभारत के फ़ारसी अनुवाद को रज़मनामा (युद्ध की कहानी) कहा

जाता है। यह चित्र इसलिए विशेष है क्योंकि यह अभिजात्य दायरों से बाहर निकलकर सामान्य लोगों की पाठशाला का एक वर्णन देता है। यह चित्र कुछ हद तक लघु चित्रकला में अब तक स्थापित मक़तब के तत्त्व को स्वीकार तो करता है मगर उन्हें एक अलग दुनिया में दिखाता है। (चित्र 9)

चित्र का प्रसंग भी कुछ दिलचस्प है। बाणों की शैया में लेटे भीष्म पितामह युधिष्ठिर को राजनीति के बारे में बता रहे हैं। इस लम्बे प्रवचन में वे माता-पिता और गुरुओं का आदर करने का महत्त्व समझाते हुए कहते हैं कि गुरुओं का आदर करना सबसे महत्त्वपूर्ण है क्योंकि माता-पिता तो शरीर और जीवन देते हैं, मगर शिक्षक हमें वह ज्ञान देते हैं जो अमर है। उनके इस कथन को आधार बनाकर चित्रकार असि कहार ने इस लघुचित्र को बनाया है। चित्रकार का नाम कोई कम महत्त्व का नहीं है। कहार, वर्ण व्यवस्था में निम्न स्तर पर रखी गई जाति है और उनका मुख्य काम पालकी ढोना था। शायद हमारे चित्रकार उनमें से उभरे कलाकार थे। असि कहार के बनाए कई दूसरे लघुचित्र बाबरनामा और अकबरनामा में भी मिलते हैं। उनका नाम महान कलाकार मिस्किन के साथ लिया जाता है।

एक पहाड़ी इलाके के क़िले और शहर के बाहर, झरने किनारे, पेड़ के नीचे, लकड़ी और घास-फूस के शेड के नीचे एक चबूतरे पर शाला लगी हुई है। इस चित्र में यह बताने की विशेष कोशिश की गई है कि शाला सामान्य जनजीवन के बीच लगी हुई है। एक ओर जनविहीन क़िला है तो उसके बाहर विविध लोगों व बच्चों की भीड़ के बीच शाला है। पास में कोई मटके में पानी भरकर ले जा रहा है, कोई झरना पार करके अपनी भैंसों को चरा रहा है तो एक ओर कोई छोटा सौदागर अपने तराजू



चित्र 9. 'क़िले के बाहर एक शाला', 'रज़मनामा', लगभग 1598-99 ईसवी, कलाकार- असि कहार (फ्री लाइब्रेरी ऑफ़ फिलाडेल्फिया)

1. हालाँकि संग्रहालय के विशेषज्ञों ने इसे उप-शाही शैली माना है, यह देखते हुए कि चित्रकार असि कहार ने अकबर के लिए अनेक और चित्र बनाए थे, इसे शाही श्रेणी में रखना शायद ज़्यादा उचित होगा।

से तौलकर कुछ बेच रहा है– शायद यह बच्चों का मनपसन्द खाद्य पदार्थ होगा, जैसे कि आज भी स्कूलों के बाहर छुट्टी के समय बेचने वाले बैठते हैं। पास ही पेड़ के नीचे एक सुन्दर घड़े में पानी रखा हुआ है (ऐसा ही एक मटका हेरात वाले चित्र में भी दिखा था)। अभी तक मक़तबों में जितने बच्चे दिखे उनसे कहीं ज़्यादा बच्चे इस एक शिक्षक से पढ़ रहे हैं।

अलग-अलग उम्र के लगभग 21 बच्चे हैं जिनमें से एक थाली भरकर कुछ फल या लड्डू पेश कर रहा है और एक बालक को उसकी माँ दाख़िल कराने लाई है। एक भी बालिका नहीं है। दो बच्चे शाला के बाहर हैं, एक– जो मटके में पानी भर रहा है और दूसरा– जो सौदागर के पास दौड़े जा रहा है। यह दोनों बच्चे बाक़ी बच्चों से बहुत भिन्न हैं और उनसे ग़रीब भी लगते हैं। शिक्षक और पढ़ने वाले सभी बच्चों की पोशाक मध्यमवर्गीय है– अधिकांश ऊपर जामा और कमरबन्द, नीचे पायजामा और सिर पर पगड़ी पहने हुए हैं। एक अधेड़ उम्र का भी छात्र है जिसने शिक्षक और सौदागर की तरह ऊपर एक अंगोछा भी ओढ़ रखा है। इतने सारे बच्चों को सँभालना शिक्षक के लिए ख़ासा मुश्किल काम रहा होगा। शायद वे किसी वरिष्ठ छात्र को सहायता के लिए रखते होंगे। एक ऊधमी बच्चे को कोड़े से मारने वाला शायद ऐसा ही एक मॉनिटर होगा। पुरानी शालाओं में इनका बड़ा आतंक था। सभी बच्चों के पास तख़्ती है जिस पर वे कुछ लिख रहे हैं। ऐसा लगता है कि वे सब फ़ारसी सीख रहे हैं, जो उन दिनों राजकीय भाषा थी। मक़तबों में किताबें, काग़ज़ और क़लम अधिक दिखे थे, मगर यहाँ किताबें दिख नहीं रही हैं, केवल तख़्ती उपयोग में हैं।

शिक्षक का पहनावा मक़तब के शिक्षकों के पहनावे से कुछ अलग है। मक़तबों के शिक्षक चोगा, पायजामा और सिर पर कुल्ला के ऊपर दस्तर पहने हुए दिखते हैं, जबकि यह ग्रामीण शिक्षक जामा, कमरबन्द और अंगोछा और सिर पर पगड़ी बाँधे हुए है। सम्भवत: यह मध्यमवर्गीय हिन्दुओं का आम पहनावा था। उनका जामा पाँव तक आ रहा है और एकाध जगह फटा हुआ भी है। उनका जूता चबूतरे के बाहर रखा हुआ है, मगर किसी और छात्र का जूता नहीं दिख रहा है।

शिक्षक के क़द को बढ़ाने की युक्ति, जो हम कई बार देख चुके हैं, यहाँ भी अपनाई गई है। शिक्षक के सिर के ठीक ऊपर पेड़ की डाली छाया भी दे रही है और शिक्षक को प्रधानता भी दे रही है। इस चित्र में हम देख सकते हैं कि शिक्षक के पास खड़े छात्र बहुत विनम्रता के साथ झुककर, हाथ बाँधकर या जोड़कर खड़े हैं। आख़िर भीष्म पितामह यही तो कह रहे थे। यह भी एक तरह से मक़तब के मौलवी से अलग है। उनके पास बच्चे न तो खड़े होते हैं और न ही इतनी विनम्रता दिखाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि छात्रों की यह अतिशय विनम्रता हिन्दू शैक्षणिक मानसिकता का अंग बन गई थी। यह विनम्रता महिला के सन्दर्भ में और भी बढ़ जाती है। वैसे मुग़लों से पहले की भारतीय लघुचित्र शैली में महिलाओं को सीधे खड़े नहीं दिखाया जाता था। वे हमेशा कुछ झुकी हुई होती हैं। इस चित्र में भी वह शिक्षक के समक्ष झुकी हुई ही चली आ रही है।

शिक्षक के हाथ में छड़ी नहीं है और उनके अन्दाज़ से भी कोई भय उत्पन्न नहीं हो रहा है। लेकिन हिंसा का उपकरण दोहरा कोड़ा बनकर मॉनिटर के हाथ में है और वह उसका भरपूर उपयोग कर रहा है शाला में अनुशासन बनाए रखने में।

ज़ाहिर है कि यह लघुचित्र शिक्षा के बारे में बहुत जटिल बातें कह रहा है। सबसे अव्वल है शिक्षा और जीवन के बीच की निरन्तरता– यह कोई बाड़ा-बन्द क्षेत्र नहीं है, बल्कि व्यापारिक स्थल, चरागाह, पहाड़, पेड़, झरना आदि के बीच लगा हुआ क्षेत्र है। चरवाहा, पानी भरने वाला, सौदागर, उस औरत की तरह कभी भी शाला में चले आ सकते हैं और शिक्षक से बतिया सकते हैं। यहाँ भी स्वाध्याय ही शिक्षण की प्रमुख विधा है, मगर छात्र के लिखे हुए को

शिक्षक बहुत ध्यान से पढ़कर ग़ल्तियाँ ठीक कर रहे हैं। जीवन के साथ निरन्तरता और अनौपचारिक स्वाध्याय के साथ-साथ विद्यार्थियों व पालकों की अतिशय विनम्रता शिक्षण कार्य को एक आध्यात्मिक प्रक्रिया बना देती है जिसमें शिक्षक एक गुरु भी बन जाता है, जो-जैसा कि भीष्म कहते हैं - परम सत्य का ज्ञान देता है।

हमें मुग़लकालीन प्राथमिक पाठशालाओं के बारे में कम ही पता है। लेकिन यह तय है कि मुग़ल काल में ऐसी शालाएँ बहुत तेज़ी से पूरे दक्षिण एशिया में फैलीं, पाठशालाएँ भी और मक़तब भी। मुग़ल शासन व्यवस्था में पढ़े-लिखे लोगों की बड़ी माँग थी और ऊँचे दर्ज़े के विद्वानों (फ़ारसी-अरबी और संस्कृत विद्वानों) की क़द्र थी। औरंगज़ेब ने वैसे तो संस्कृत पण्डितों का शाही आश्रय कम कर दिया था, मगर उसके दानिशमन्द खाँ जैसे उच्च अधिकारियों ने बड़े पैमाने पर आलिमों और पण्डितों को संरक्षण दिया। इनके अलावा यह वह दौर था जब भारत का विदेशों से व्यापार चरम पर था। इसमें भी हिसाब-किताब वग़ैरह की ज़रूरत थी। इस माहौल में भारत में एक शिक्षित मध्यम वर्ग का उदय हो रहा था, जो धीरे-धीरे अपने स्वतन्त्र पाँव जमाने लगा था। इन सबके चलते पूरे देश में प्राथमिक शालाओं का जाल बिछा। जिस पाठशाला की तस्वीर असि कहार ने बनाई, उसी को आगे चलकर जॉन एडम, थामस मुनरो और एलफिंस्टन ने औपनिवेशिक शिक्षा की नींव बनाने की वकालत की थी। उपनिवेशवाद का शिक्षण की छवियों पर क्या असर पड़ा, इसे हम अगले किसी अंक में देखेंगे। मगर इस लेख को समाप्त करने से पहले एक आख़िरी छवि पेश करना चाहता हूँ जो मुझे बेहद पसन्द है।



चित्र 10 शिक्षक और छात्र (निजी संकलन से) लगभग 1585

शिक्षक और छात्र के बीच के विशेष रिश्ते और बन्धन को मार्मिक रूप से दर्शाने वाले कई मुग़ल लघुचित्र हैं, मगर यह रेखाचित्र मेरे दिल को छू गया। (चित्र 10)

एक वयस्क विद्वान शिक्षक, किताब और युवा छात्र के बीच के गाढ़े रिश्ते को यह चित्र जिस कोमलता के साथ दर्शा रहा है, उसे बयान करना कठिन है। शायद इसे कुछ देर ध्यानपूर्वक देखना और अनुभव करना ही उचित है।

स्रोत

1. चित्र : 7 https://archive.org/details/mma_laila_and_majnun_in_school_folio_from_a_khamsa_quintet_of_nizami_446603

2. चित्र : 8 https://art.thewalters.org/detail/239/layl-and-majnun-fall-in-love-at-school-3/

3. चित्र : 9 https://libwww.freelibrary.org/digital/item/38977

सी एन सुब्रह्मण्यम पिछले तीन दशकों से एकलव्य के सामाजिक विज्ञान कार्यक्रम से जुड़े रहे हैं। वर्तमान में सेवानिवृत्त हैं और इतिहास के बारे में बच्चों और शिक्षकों के लिए लिखने में रुचि रखते हैं।

सम्पर्क : subbu.hbd@gmail.com